फ़ोटोः साभार- राष्ट्रीय एकल नारी अधिकार मंच

एकल हैं , अकेली नहीं !

न्याय के लिये संगठित एकल महिलाएं

पारुल चौधरी

समाज की पितृसत्तात्मक रचना के चलते सभी महिलाएं किसी न किसी स्थिति में स्वयं को अन्याय का शिकार पाती हैं। यही कारण है कि महिलाओं के जीवन में संघर्ष की सैंकड़ों कहानियां समाई होती हैं। इन्हीं कहानियों में कुछ एक ऐसे विशेष वर्ग की हैं जो समाज के बीचों बीच रह कर भी सदियों से अदृश्य बना रहा और अपनी लड़ाईयां लड़ता रहा। हम बात कर रहें हैं 'एकल महिलाओं' की।

विवाह आज भी समाज में एक व्यापी व महत्वपूर्ण व्यवस्था है। महिलाओं के जीवन में यह आज भी सर्वाधिक आवश्यक उपलब्धि के रूप में कायम है। ऐसे में महिलाओं का ओहदा, उनका मान सम्मान उनकी वैवाहिक स्थिति से गहरा संबंध रखता है।

इस व्यवस्था में ऐसी महिलाएं जो कि विवाह जैसे संबंध में किसी पुरुष के साथ नहीं जुड़ी हैं, विशेष रूप की असमानता से गुज़रती हैं। सभी महिलाएं जो विभिन्न कारणों से विवाह या विवाह जैसे बंधन में नहीं हैं जैसे विधवा, तलाकशुदा, परित्यक्ता, 'छोड़ी गई', घर से निकाली गई, महिलाएं जिन्होंने स्वयं शादी से निकलने का निर्णय लिया, जिन्होंने शादी नहीं की, ये सभी महिलाएं एकल हैं।

2001 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार भारत की कुल महिला आबादी में से 8 प्रतिशत एकल हैं, यानी कम से कम 3.8 करोड़ महिलाएं। यह आंकड़ा विश्व के कई देशों की कुल आबादी से भी ज़्यादा है। महिलाओं का विवाह बंधन में न होना अपने आप में कोई समस्या की बात नहीं है। लेकिन जिस सामाजिक परिवेश में हम जी रहे हैं, वहां एकल होने पर महिलाओं को सामाजिक भेदभाव, आर्थिक अन्याय व असुरक्षा का सामना करना पड़ता है। मानवाधिकारों का हनन होता है और उन्हें अपने अंदर छुपे सामर्थ्य व शक्ति के विकास में असंख्य बाधाओं का सामना करना पड़ता है। एकल होना महिलाओं को समाज से ही नहीं बल्कि उनके परिवार, समुदाय व आस-पड़ोस की अन्य महिलाओं से भी अलग-थलग कर देता है। यही कारण है कि लंबे समय तक महिला आंदोलन में भी एकल महिलाओं के अनुभव व उनकी शक्ति जुड़ नहीं सके।

लेकिन आज स्थिति में कुछ परिवर्तन है, सन् 1999 में राजस्थान में एकल महिलाओं को संगठित करने की जो पहल शुरू हुई आज वह एक बड़ा रूप ले चुकी है। राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, झारखंड व बिहार

में एकल महिलाओं ने साथ आकर एकल महिला संगठन बनाए हैं, जिनके माध्यम से वह अपने अधिकारों को पाने के लिये संघर्षरत हैं। यह पहल अब महाराष्ट्र व पंजाब सहित कई अन्य राज्यों में भी ज़ोर पकड़ रही है। आज 80,000 से भी अधिक एकल महिलाएं संगठित हैं, और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है। संगठित एकल महिलाएं अपने अधिकारों के लिए ही नहीं बल्कि अन्य मुहिमों के साथ जुड़ कर एक न्याय संगत समाज के लिए अपनी आवाज़ बुलंद कर रही हैं। यह संगठन की ही ताकत है कि एकल महिलाओं कि कहानियां अब गुमनाम नहीं हैं, वह अब वे अपनी स्थिति को समाज के सामने लाकर बदलाव की ओर अग्रसर हैं।

फ़ोटो: साभार- राष्ट्रीय एकल नारी अधिकार मंच

इस संघर्ष को बेहतर समझने के लिये आइए जानते हैं कि एकल महिलाओं के साथ किस प्रकार अन्याय होता है–

- शादी-ब्याह, जन्म-मरण, तीज-त्यौहारों पर निभाये जाने वाले ऐसे असंख्य रीति-रिवाज हैं जिनमें एकल महिलाओं का भाग लेना 'अपशकुन' माना जाता है। किसी दूसरे से न्योता मिलना तो दूर, अपने परिवार में इस तरह का कुछ कार्य होने पर भी एकल महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने श्रम व अर्थ से तो पूरा सहयोग दें, लेकिन अपना चेहरा न दिखाएं। अपने बाल-बच्चों के विवाह कार्यक्रम में भाग लेने पर भी पाबंदियां होती हैं। यह सोचना कठिन नहीं है कि खुशी के यह मौके एकल महिलाओं के लिये कितनी टीस व पीड़ा लाते हैं।
- एकल होने पर महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वह स्वयं को अदृश्य बना लें - ऐसा कुछ भी न करें जिससे उनकी तरफ़ दूसरों का ध्यान जाए। हंसना, बनना-संवरना, अपनी इच्छाएं ज़ाहिर करना, अच्छे कपड़े व खान-पान न करना जैसे अनेक प्रकार के बंधन परम्पराओं के रूप में एकल महिलाओं पर मढ़े जाते हैं। इनका पालन न करने पर समाज में 'चरित्रहीन' कहलाना एक आम बात है।
- विवाह के बाद सामाजिक रूप से महिला के अधिकार मायके में सीमित हो जाते हैं, यह समझा जाता है कि माता-पिता की ज़िम्मेदारी पूरी हुई और अब महिला की 'देखरेख' पति व ससुराल की ज़िम्मेदारी है। ऐसे में पति या शादी के न रहने पर बहुत सी महिलाएं स्वयं को आधारहीन पाती हैं। उन पर बच्चों की ज़िम्मेदारी तो होती है पर कोई भी ऐसा संसाधन नहीं होता जिनसे वह गुज़र-बसर कर सकें। कुछ महिलाओं को ससुराल में रहने नहीं दिया जाता और बहुत सी अन्य महिलाओं पर ससुराल से निकाले जाने का डर बना रहता है। गरीब महिलाएं दिहाड़ी कर अपनी आर्थिक ज़िम्मेदारी तो उठाती हैं, लेकिन सर पर छत के लिए अक्सर सास-ससुर, जेठ-देवर, भाई-भतीजों की मोहताज हो जाती हैं।
- विधवा महिलाओं को पति की संपत्ति में अधिकार प्राप्त है लेकिन ज़मीनी स्तर पर इसमें बहुत अड़चने हैं। बड़ा बेटा होने पर उसी को मालिक समझा जाता है। अगर बच्चे न हों या छोटे हों तो ज़मीन-संपत्ति पर अधिकार कायम करना बहुत मुश्किल होता है। जेठ-देवर आदि से किसी तरह हक़ ले भी लिया जाए, तो एकल महिला को कमज़ोर जान उसकी ज़मीन-संपत्ति पर घात लगाने वाले बहुत से असामाजिक तत्व मौजूद रहते हैं।
- तलाक़शुदा या परित्यक्ता महिलाओं के आर्थिक अधिकार बिल्कुल भी सुरक्षित नहीं होते। भरण-पोषण आदि

के लिए जो क़ानूनी प्रावधान मौजूद हैं वे अधिकांश महिलाओं की पहुंच से बाहर हैं। जो महिलाएं लंबी लड़ाई के बाद कोर्ट से भरण-पोषण को आदेश ले पाती हैं, उनमें से बहुत सी महिलाओं को तय राशि नियमित रूप से नहीं मिलती है। ज़मीन संपत्ति में अधिकार स्वयं के लिए और अपने बच्चों के लिए मिल पाना भी बहुत मुश्किल होता है।

- ज़िंदगी भर मेहनत करने के बाद बहुत सी एकल महिलाएं वृद्धावस्था में अपने बच्चों पर निर्भर होती हैं, और ऐसी स्थिति में भी उनके साथ बदसलूकी व क्रूर व्यवहार असामान्य नहीं है।
- सरकारी नीतियां एकल महिला मुखिया परिवारों को नज़र में रखते हुए नहीं बनाई जातीं। इस कारण एकल महिलाओं को सरकारी योजनाओं से लाभ लेने में परेशानी होती है- जैसे खुद के नाम पर राशन कार्ड बनवाना, कृषि के लिए ऋण लेना, यहां तक कि जनगणना व अन्य सरकारी सर्वे में स्वयं को परिवार का मुखिया दर्ज करवाने में भी समस्या आती है।

संगठन के ज़रिये न्याय

समस्याओं की लंबी सूची हम देख चुके हैं, लेकिन इन सब के बावजूद एकल महिलाएं संगठित होकर आगे आई हैं, और इन बाधाओं के हल भी निकाल रही हैं।

अन्याय की शिकार एकल महिलाएं जो कहीं यह मानने लगती हैं कि यह दुःख उनके भाग्य में लिखा है, जब अपनी जैसी स्थिति से जूझ रही अन्य महिलाओं के संपर्क में आती हैं, तो यह भ्रांति दूर हो जाती है, और वह उन्हें कमज़ोर बनाने वाली सामाजिक व्यवस्था को बेहतर समझ पाती हैं। इसी समझ के साथ उन्हें संगठन के रूप में एक वैकल्पिक परिवार मिलता है, जो समाज में उनके एकाकीपन को कम करता है। संगठन में अन्य एकल बहनों के साथ वह हंस बोल सकती हैं, अपनी प्रतिभाओं का विकास कर सकती हैं, और अपनी समस्याओं का मिलकर समाधान कर सकती हैं। गांव-समाज में एक दबाव समूह के रूप में काम करते हुए एकल बहनों के साथ परिवार में हो रहे अत्याचार का विरोध करती हैं, ज़मीन सम्पत्ति के पेचीदा मामलों में भी एकल महिला समूह मिलकर रणनीति बना रहे हैं और महिलाओं के अधिकारों की रक्षा कर रहे हैं। साथ ही वह खुशी के मौकों पर भी एक दूसरे के साथ खड़े रहते हैं। जहां एकल बहनें संगठित हैं वहां वह अपनी बहनों की मदद से अन्यायपूर्ण रीतिरिवाज़ तोड़ रही हैं। वह अब अपने बच्चों की शादियों में स्वयं रस्में निभाती हैं, अच्छे कपड़े पहनती हैं, गांव पंचायत में अपनी बात खुल कर रखती हैं।

अपने अधिकार लेने तक यह संघर्ष सीमित नहीं है। एक सदस्य जब खुद संगठन से जुड़ विकास करती है तो

वह अन्य एकल बहनों को भी न्याय दिलाने, उन्हें चार-दीवारी से निकलने के लिये हिम्मत देने में मदद करती है। यही नहीं, एकल महिला समूह स्थानीय स्तर पर भ्रष्टाचार, स्कूल में टीचरों के न आने, पानी, बिजली, राशन आदि के मुद्दों को भी उठाते हैं। वह केवल विधवा पेंशन ही नहीं, बल्कि वृद्धा व निःशक्त पेंशन सही दावेदारों को दिलवाने के लिये भी आगे आकर कार्य करते हैं। राजस्थान के एक समूह में अपने ज़िले के निजी अस्पताल में गैर-कानूनी रूप से गरीबों व बच्चों के खून निकाले व बेचे जाने के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई और प्रशासन पर कार्यवाही के लिये दबाव डाला।

यह सब उदाहरण यह बताते हैं कि जब महिलायें स्वयं सशक्त होती हैं और संगठन की शक्ति को समझती हैं तो वह हालात से समझौता नहीं करतीं। लड़ाई बड़ी हो या छोटी, वह पीछे नहीं हटतीं। और यह प्रयास स्थानीय स्तर पर सीमित नहीं, राज्यों और राष्ट्र स्तर पर जो एकल महिला नेतृत्व उभर कर आया है, वह न्याय के लिये आवाज़ उठाने वाले अन्य संघर्षों में भी बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रहा है। फ़िर चाहे वह आदिवासियों के जंगल-ज़मीन की लड़ाई हो, या भोजन के अधिकार की, महिलाओं के ख़िलाफ़ हो रही हिंसा की या वृद्धजनों के लिये सामाजिक सुरक्षा की।

संगठित हुई एकल बहनें यह सोचती हैं कि भारत के सभी राज्यों में एकल बहनें संगठित हों और अपने अधिकार प्राप्त कर सकें, वहीं वह एक बेहतर, न्यायसंगत समाज का ख़्वाब भी सच करना चाहती हैं।

पारुल चौधरी *सचिवालय, राष्ट्रीय एकल नारी अधिकार मंच की कार्यकर्ता हैं।*